इकाई 8 डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का चिंतन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 डॉ. आंबेडकर का जाति उन्मूलन का सिद्धांत : वैज्ञानिक एवं जनतांत्रिक चिंतन

8.3 समाजवादी जनतंत्र का विचार

8.4 डॉ. आंबेडकर का नारी संबंधी चिंतन

8.4.1 हिंदू कोड बिल : नारी उत्थान की क्रांतिकारी पहल

8.5 डॉ. आंबेडकर का धर्म संबंधी चिंतन

8.5.1 बुद्ध धम्म की दीक्षा

8.6 सारांश

8.0 उद्देश्य

भारत की आजादी के आधे शतक से अधिक समय बीत जाने पर भी दलित वर्ग के सामाजिक न्याय का प्रश्न अभी जस का तस बना हुआ है। संविधान में मौजूद सुरक्षा प्रावधानों कानूनों के बावजूद भी जाति व्यवस्था अटूट क्यों और कैसे बनी रही? इसके कारणों की मिमांसा प्रस्तुत इकाई में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के चिंतन के आधार पर की गई है। संविधान के शिल्पकार भारत रत्न डॉ. आंबेडकर की विचारधारा उनके संघर्ष और आंदोलन का प्रथम लक्ष्य भारत की परंपरागत रूढ़िवादी अमानवीय जाति व्यवस्था का उन्मूलन और समतावादी समाज की निर्मिति रहा है। आइए देखें कि उनके द्वारा भारत के संविधान को जनतांत्रीक रूप में प्रस्तुत करने और संसद द्वारा एकमत से स्वीकार किए जाने के बाद भी दलित वर्ग के प्रति छुआछूत, तिरस्कार और उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति में गुणात्मक बदलाव क्यों नहीं हो पाया है। आजादी के बाद सत्ता में आयी लगभग सभी राजनीतिक पार्टियों द्वारा राजनीतिक स्तर पर, सामाजिक–सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्तर पर हाशिए के स्वरों की अनदेखी होती रही। जातिगत उत्पीड़न, शोषण और आर्थिक क्षेत्र की लगभग सभी इकाइयों से उनके बहिष्करण तथा सांस्कृतिक अलगाव के विभिन्न संदर्भों में इस पर विचार किया जाएगा। राजनीतिक स्वतंत्रता हासिल करने के समय ही इस प्रकार की चेतावनी डॉ. भीमराव आंबेडकर ने तत्कालीन राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के नेताओं को दी थी, जिसकी सभी ने अनदेखी की। हमें यह जानकर आश्चर्य होता है कि ब्रिटिश शासन के दौरान भी परंपरागत यथास्थितिवादियों के वर्चस्व को कोई चुनौती नहीं दी गई। क्योंकि वर्ण–जाति और स्त्री विरोधी परंपराओं का निर्वाह हिंदू धर्म के आचरण के रूप में जारी था। हाशिए के समाज को ब्राह्मणवाद की नृशंसता से मुक्ति के लिए सामाजिक – सांस्कृतिक सुधार की माँग करने वाले परिवर्तनकामी चिन्तकों के प्रयासों, सुझावों तथा कार्यक्रमों को राष्ट्रीय आंदोलन के राष्ट्रीय एजेंडे में शामिल नहीं किया गया जो दर्शाता है कि राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल नेतृत्व ने इस सामाजिक प्रश्न को बड़े ही हल्के तौर पर लिया। यह कह सकते हैं कि उत्पीड़ितों के पक्ष में खड़े तमाम परिवर्तनकारी आवाजों को अनसुना करने से भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन एकतर्फा आंदोलन के रूप में चलता रहा। स्पष्टतः सवर्णहित के पक्ष में राष्ट्रीय आंदोलन की

रणनीतियाँ सक्रीय रही और उस समय के प्रश्न अर्थात् दलितों आदिवासियों, विमुक्तजनों, खानाबदोशों के उत्पीड़न की परंपराएं निसंकोच शर्मनाक रूप में जारी रही। इनके जीवन यापन, रोजगार और आर्थिक भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु राजनीतिक स्तर पर ठोस कदम लेने की ओर कोई गंभीर कदम उठाए नहीं गए। इन वर्गों की आर्थिक भागीदारी के सवाल कभी देश की जनता के अहम प्रश्न के रूप में विधायिकाओं या संसद में चर्चा का विषय नहीं बन सके। जिसका परिणाम स्पष्ट रूप से देश भर में घटित दलित–आदिवासी उत्पीड़न की घटनाओं की बढ़ती संख्या, दलित आदिवासी स्त्री के ऊपर होने वाले बलात्कारों की जघन्य घटनाएं, दलित–आदिवासियों में बढ़ती गरीबी और बेरोजगारी, स्वास्थ्य की अनदेखी, विकास से वंचित किये जाने के प्रश्न के रूप में देश के समक्ष है। अतः आवश्यकता इस बात के मूल्यांकन की है कि स्वतंत्रता के अधिकारों का पूर्ण रूप से हाशीए के समाजों को लाभ क्यों नहीं मिला? आर्थिक क्षेत्र में इनकी जनसंख्या के प्रतिशत में भागीदारी तथा राजनीतिक इकाइयों में प्रतिशत के अनुसार भागीदारी के प्रश्नों को गंभीर रूप से देखा नहीं गया। डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी में इन प्रश्नों को सुलझाने के क्या विकल्प दिए हैं तथा उन्हें हमारे स्वतंत्र देश के राजनीतिक सत्ताओं के शीर्षस्थ नेतृत्व, नागरिक समुदाय, बुद्धिजीवि वर्ग ने इसे किस प्रकार ग्रहण किया और इसके हल निकालने के प्रयास किए गए हैं। प्रस्तुत इकाई में इन सभी पहलुओं के अध्ययन द्वारा हाशीए के समाज के अधिकारों के लिए डॉ. आंबेडकर ने तत्कालीन समय में राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में खड़े किए सवाल, सुझाएं गए विकल्प तथा सामाजिक न्याय के मुलभूत अधिकार के महत्व को किस प्रकार प्रस्तुत किया इसका अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- डॉ. भीमराव आंबेडकर द्वारा प्रस्तुत जाति विनाश के महत्वपूर्ण विचार द्वारा दलित मुक्ति दर्शन को समझ सकेंगे;
- समतावादी समाज निर्मिति के उद्देश्य से परिचित हो सकेंगे;
- डॉ. आंबेडकर के जनतंत्र की अवधारणा को रेखांकित कर सकेंगे;
- डॉ. आंबेडकर के समाजवादी राष्ट्र की स्थापना के मूल दृष्टिकोण को समझ सकेंगे;
- डॉ. आंबेडकर के स्त्री मुक्ति के प्रयासों से परिचित हो सकेंगे;
- धार्मिक वर्चस्ववाद के प्रति डॉ. आंबेडकर की वैज्ञानिक दृष्टि और नजरिए को समझ सकेंगे;
- दलित मुक्ति के लिए बुद्ध धम्म के स्वीकार के विज्ञानवादी दृष्टिकोण को जान सकेंगे; और
- दलित चेतना की वैचारिकी के स्रोत डॉ. आंबेडकर की प्रखर वैज्ञानिक दृष्टि और विश्लेषणात्मक सोच को बखूबी समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

आजादी के बाद के आधुनिक भारत में दलितों पर हुए अत्याचारों की घटनाओं की संख्या देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत की आजादी भी जाति प्रथा और अस्पृश्यता को खत्म करने में कामयाब नहीं हो सकी। भारतीय संविधान में जाति प्रथा को खत्म करने के अनेक कानूनी प्रावधान है, जिसमें दलितों की जीवन रक्षा के लिए, उनके प्रति छुआछूत बरतने तथा संविधान के अनुसार व्यक्ति की समता, स्वतंत्रता और न्याय मूल्यों के

उल्लंघन करने पर सख्त सजाओं का प्रावधान किया गया है। हम यदि परंतु पिछले केवल दस वर्षों में दलितों पर हुई जघन्य और हिंसात्मक घटनाओं को देखें तो पता चलता है कि जाति प्रथा को जीवित रखनेवाली ब्राह्मणवादी धर्मपोषित व्यवस्था द्वारा संविधान के प्रावधानों की अनदेखी ही नहीं बल्कि अवमानना की गई है। हिंदू धर्म के विधि–विधान मनुस्मृति में बताई गई विषम समाज की अवधारणा में निहित जाति निर्मिति के ईश्वरीय विधान को तथा पूर्वजन्म, कर्मफल और भाग्य के मिथ्या प्रभाव के कारण हजारों वर्ष पुरातन धर्मनीतियों का पालन करने वाला हिंदू धर्मावलंबी इस पर गौर नहीं करता है। जाति श्रेष्ठता और वर्चस्व की इस अवैज्ञानिक एवं अंधः विश्वासी धारणा का बहुसंख्यक हिंदूओं द्वारा आज के समय में (इक्कीसवीं सदी) विश्वास किया जाना और दलितों के प्रति हीनता की दृष्टि रखकर उसे सरेआम अपमानीत किया जाना किसी भी सभ्य समाज को आश्चर्य में डालता है। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने 'अछूत कौन और कैसे' ग्रंथ में इस नृशंस अमानवीय जातिप्रथा के पीछे की यथास्थितिवादी मानसिकता पर कठोर हमला करते हुए कहा है कि "शूद्रों के अतिरिक्त हिन्दू सभ्यता ने तीन और सामाजिक वर्गों को जन्म दिया है। वे तीन सामाजिक वर्ग है :

1. जरायमपेशा जातियाँ, जिनकी जनसंख्या लगभग 2 करोड़ है। (आज के समय में इनकी संख्या 5 करोड़ से अधिक है)
2. आदिवासी जातियाँ जिनकी जनसंख्या लगभग 1 करोड़ 50 लाख है। (आज इनकी जनसंख्या लगभग 7 करोड़ है।)
3. अछूत जातियाँ, जिनकी जनसंख्या 5 करोड़ है। (आज के समय में अछूत/दलितों की संख्या 16 करोड़ है।)

इन वर्गों का अस्तित्व जुगुप्सा का विषय है। यदि हिन्दू सभ्यता को इन वर्गों के जनक के रूप में देखा जाए, तो वह सभ्यता ही नहीं कहला सकती है। उस सभ्यता को हम क्या नाम दें, जिसने ऐसे लोगों की एक बड़ी संख्या को जन्म दिया हो, जिन्हें यह शिक्षा दी जाती है कि चोरी–चकारी करके जीविका चलाना जीविकोपार्जन का एक मान्यक्रम है। दूसरी बड़ी संख्या, जो सभ्यता के बीचों–बीच अपनी आरंभिक बर्बर अवस्था बनाये रखने के लिए स्वतंत्र छोड़ दी गई है। एक तीसरी बड़ी संख्या, जिसे सामाजिक व्यवहार से परे की चीज़ समझा गया है, जिसके स्पर्श मात्र से आदमी अपवित्र हो जाता है। यदि किसी दूसरे देश में ऐसे वर्ग विद्मान होते तो लोग अपने दिलों को टटोलते और उसके मूल कारण का पता लगाने का प्रयत्न करते, किन्तु हिन्दू को इन दो में से एक भी बात नहीं सूझी। इसका कारण सरल है। हिन्दू को यह लगता ही नहीं कि इन वर्गों का अस्तित्व उसके लिए कुछ क्षमा–याचना करने अथवा लज्जा का कारण है। वह न इस विषय में प्रायश्चित करने की अपनी जिम्मेदारी समझता है और न इसकी उत्पत्ति तथा विकास के संबंध में खोज करने की। "हिन्दू सभ्यता के बारे में अत्यंत सही विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं" "हिंदू सभ्यता की बुद्धिमत्ता, श्रेष्ठता और पवित्रता में लोगों का जो झूठा विश्वास है, उसका मूल कारण हिन्दू विद्वानों का विचित्र मानस शास्त्र है।" दलित हितों के लिए संघर्षरत डॉ. आंबेडकर जैसे विचारक एवं चिंतक का साफतौर पर यह मानना था कि "जब तक भारतीय समाज आंतरिक गुलामी यानी सवर्ण वर्चस्व से बहुसंख्यक दलित, आदिवासी तथा स्त्री मुक्ति के सच को हासिल नहीं करता तब तक एक देश के रूप में उसे आजादी के सपने देखने का नैतिक अधिकार नहीं है।" डॉ. आंबेडकर की नजर में आजाद राष्ट्र की अवधारणा तब तक नाकाफी है जब तक समग्र भारतीय समाज की मुक्ति और विकास का लक्ष्य हासिल न हो। अतः जरूरी है कि जाति व्यवस्था के मुलभूत विषमतावादी रचना के पीछे की ब्राह्मणवादी विचारधारा पर पुनर्विचार किया जाए। क्यों

यह यथास्थितिवादी अवैज्ञानिक विचारधारा इसकी उत्पत्ति के साढ़े तीन हजार वर्षों के बाद भी मजबूत जड़ों पर खड़ी है। भारतीय समाज परिवर्तन के लिए डॉ. आंबेडकर के चिंतन को केन्द्र में रखकर सामाजिक बदलाव का उद्देश्य पूर्ण किए जाने की दिशा में क्या कदम उठाए जाने चाहिए इसके बारे में आगे आप पढ़ेंगे।

8.2 डॉ. आंबेडकर का जाति उन्मूलन का सिद्धांत : वैज्ञानिक एवं जनतांत्रिक चिंतन

भारत का सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक ढाँचा लोकतंत्रीय मूल्याधारित बने यह डॉ भीमराव आंबेडकर की परिकल्पना थी। वे लोकतंत्र के पक्षधर होने के साथ–साथ भारत के जनतंत्र को जनता की अपेक्षाओं के अनुरुप आकार देना चाहते थे। उनका यह मानना था कि लोकतंत्र शासन की एक पद्वति है जो बिना किसी खून–खराबे के क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है (अम्बेडकर, संकलन, भगवानदास, 1963:61) लेकिन भारत के जनतंत्र के प्रति वे बहुत आश्वस्त नहीं थे क्योंकि भारतीय सामाजिक संरचना जाति एवं वर्ण सिद्वांत के आधार पर अपने कट्टरतम रुप में अस्तीत्व में है और वह जनतन्त्र विरोधी है।

भारतीय राजनीतिज्ञ हमेशा से सामाजिक सुधारों की अपेक्षा राजनीतिक बदलाव में अधिक रुचि दिखाते रहे हैं। डॉ. आंबेडकर ने 'जातिप्रथा उन्मूलन' जैसी महत्वपूर्ण मूल्यांकन करने वाली किताब में इस भेदभावपूर्ण रवैये की आलोचना करते हुए कहा है। एक समय था, जब यह माना जाता था कि सामाजिक कुशलता के बिना अन्य कार्य क्षेत्रों में प्रगति असंभव है। कुप्रथाओं से फैली बुराइयों के कारण हिंदू समाज की कार्यकुशलता समाप्त हो चुकी थी। अब इन बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए अथक प्रयास करने होंगे। इस तथ्य को समझ कर ही राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के साथ ही सामाजिक सम्मेलन की भी स्थापना हुई थी। जहाँ कांग्रेस का संबंध देश के राजनीतिक संगठन में कमजोर तथ्यों को परिभाषित करना था, वहां सामाजिक सम्मेलन हिंदू समाज के सामाजिक संगठन में कमजोर बातों को दूर करने में लगा हुआ था। कुछ समय तक कांग्रेस और सामाजिक सम्मेलन ने एक सामान्य क्रियाकलाप के दो अंगों के रूप में कार्य किया और उनके वार्षिक अधिवेशन भी एक ही पंडाल में होते थे। किंतु शीघ्र दो अंग दो दलों में बदल गए – एक राजनीतिक सुधार दल और दूसरा सामाजिक सुधार दल। इनके बीच उग्र विवाद उठ खड़े हुए।" (समग्र वाड्.मय पृ. 55)

डॉ. आंबेडकर ने स्वतंत्रता आंदोलन से पूर्व की पृष्ठभूमि में राजनीतिक उत्थान के पक्षधर और सामाजिक सुधार के पक्षधरों में चल रहे विवाद के पीछे छिपे ब्राह्मणवाद, जातिवाद से पर्दा हटा दिया। कांग्रेस के आठवें अधिवेशन के समय श्री बालगंगाधर तिलक के नेतृत्व में सामाजिक सम्मेलन के पंडाल में आग लगाने की धमकी देने के कारण समाज सुधारकों का दल पीछे हट गया। यहीं पर कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री डब्लू. सी बनर्जी ने समाज सुधार समाप्ति की लगभग घोषणा ही कर दी। डॉ. आंबेडकर ने श्री बैनर्जी की इस घोषणा की आलोचना करते हुए लिखा है "मैं सामाजिक सुधार के बारे में बात करूंगा। मैं राजनीतिक प्रवृत्ति के हिंदुओं से पूछता हूँ कि जब आप अपने ही देश के अछूतों जैसे एक बहुत बड़े वर्ग को सार्वजनिक स्कूल का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें सार्वजनिक कुओं का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें आम सड़कों का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें आम सड़कों का प्रयोग नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं?

जब आप उन्हें अपनी पसंद के आभूषण और वेशभूषा धारण नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं? जब आप उन्हें अपनी पसंद का भोजन नहीं करने देते तो क्या आप राजनीतिक सत्ता के योग्य हैं?"

इन प्रश्नों को उपस्थित करके उन्होंने श्री बनर्जी द्वारा समाजसुधार को वरीयता न देकर केवल राजनीतिक सुधार पर ही कांग्रेस की नीति को केन्द्रीत करने की आलोचना करते हुए कटघरे में खड़े किया। शोधपरक और दूरदृष्टि से उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से सामने रखा।

जाति व्यवस्था के यथास्थितिवादी स्वरुप में निहीत श्रेणी विभाजन के आधार पर मानव के साथ निम्न जातियों के संदर्भ में किया जानेवाला व्यवहार क्रूरतापूर्ण और नृशंस है। किसी भी देश के जनतांत्रिक ढांचे की बुनियाद ऐसी भेदभावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के साथ पड़ना बहुत खतरनाक तथा असफलता की ओर ले जाने वाली हो सकती हैं। जन्म आधारित जाति व्यवस्था मूलतः खामियों से भरी है, जिसमें व्यक्ति की पहचान उसकी रुचि अथवा कुशलता को नकारकर उसके जन्म के आधार पर निश्चित होती है। डॉ भीमराव आंबेडकर के जाति–व्यवस्था के संबंध में अनुसंधान तथा विश्लेषण के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारतीय सामाजिक संरचना जो जाति आधारित, जन्माधारित, भाग्य आधारित बनाने की कोशिश की गई इसे निश्चित करने के पीछे ब्राह्मणवादी विचारधारा की निर्णायक शक्ति की भूमिका है।

डॉ आंबेडकर अंतिम रुप से इस निष्कर्ष तक पहुँचे थे कि धर्म और जाति की प्रभुसता के कारण ब्राह्मणवाद मजबूत होता गया और वर्ण–जाति श्रेणी विभाजन को भारत की सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में कामयाब हुआ। धर्म की भुमिका के संबध में उनकी प्रसिद्ध रचना "क्रांति तथा प्रतिक्रांति" का यह कथन विचारणीय है "क्योकि हकीकतन ऐसा कोई देश नहीं है जिसमें" धर्म ने उनका इतिहास बनाने में इतनी बड़ी भूमिका निभाई हो, जितना कि भारत के इतिहास में। भारत का इतिहास बौद्व धर्म और ब्रह्मणवाद के बीच खूनी–संघर्ष का इतिहास है।" (खंड 1, पृ. बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्.मय)

उनका विचार स्पष्ट था कि "राजनीतिक संविधानों के निर्माताओं को सामाजिक शक्तियों को ध्यान में रखना चाहिए। इससे प्रकट होता है कि ऐसे राजनीतिक जिन्होंने यह नहीं माना कि भारत की सामाजिक समस्या का राजनीतिक समस्या पर भी कोई प्रभाव है, वे संविधान तैयार करने में सामाजिक समस्या को मानने के लिए बाध्य हुए।" डॉ. आंबेडकर तत्कालीन समय में दलितों (अछूत) के साथ हो रहे निरंतर उत्पीड़न, बहिष्कार, अवहेलना तिरस्कार जैसे अन्यायपूर्ण घटनाओं को करीब से देख रहे थे। एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर शासन करने का आधार भारतीय भेदभावपूर्ण संरचना है जिसके उन्मूलन के लिए एक वैचारिक भूमि का निर्माण वे कर चुके थे।

जाति व्यवस्था पर किए अनुसंधान और विश्लेषण से डॉ. आंबेडकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्रह्मणवाद का सारा इतिहास जाति व्यवस्था को अपरीवर्तनीय स्वरुप देकर ब्राह्मणों द्वारा खुद के लिए श्रेष्ठतम की श्रेणी हासिल करने और अन्य सभी श्रेणियों पर वर्चस्व स्थापित करने के लिए किए गए षड्यंत्र के रूप में देखा जाना जरुरी है।

ब्रह्मणवाद ने जाति का निर्धारण व्यक्ति जन्म के साथ जोड़कर उस दिशा में जरुरी धर्मशास्त्रों की निर्मिति करके धर्मनिर्देशों द्वारा सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व्यवस्था पर कब्जा कर लिया। अस्पृश्यों की एक अलग श्रेणी तैयार करके उन्हें सामाजिक व्यवस्था में अस्पृश्य (अछूत) घोषित करके उन्हें शिक्षा, संपत्ति, मनपसंद व्यवसाय करने के

बुनियादी अधिकारों से वंचित कर दिया। इसके लिए विधि–विधान अर्थात धर्म के कानूनों का विधि विधान तैयार किया, जो मनुस्मृति के नाम से जाना जाता है।

डॉ. आंबेडकर प्रश्न करते हैं कि "क्या आप तर्क या प्रश्न उठा सकते हैं और हिंदुओं से यह कह सकते हैं कि वे जाति व्यवस्था को समाप्त करें, क्योंकि वह तर्क के विरूद्ध है? इससे यह प्रश्न उठता हैः क्या हिंदू अपने तर्क का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र है? मनु ने तीन अनुशास्तियाँ विहित की हैं, जिनके अनुसार प्रत्येक हिंदू को आचरण करना चाहिएः

'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मजः'

यहाँ तर्क का प्रयोग करने के लिए कोई स्थान नहीं है। हिंदू को 'सदाचार' का पालन करना होगा। वह किसी अन्य का पालन नहीं कर सकता। इस संबंध में प्रश्न यह उठता है कि यदि वेदों और स्मृतियों के अर्थों के संबंध में कोई संदेह उठता है तो उनके पाठ का निर्वचन कैसे किया जाएगा? इस महत्वपूर्ण प्रश्न के संबंध में मनु के निश्चित विचार है। वे कहते हैंः

> यो वमन्येत ते मूले हेतूशास्त्रश्रयात् द्विजः।
> स साधुभिर्बहि कार्यों नास्तिको वेद निन्दकः।।

अर्थात् नियम के अनुसार वेदों और स्मृतियों की व्याख्या करने वाले सिद्धांत के रूप में तर्कणावाद को पूर्णतः निराकृत किया गया है। इसे नास्तिकता के समान ही अनैतिक माना गया है और इसके लिए बहिष्कार' करने की दंड–व्यवस्था की गई है।" (डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, समग्रवङमय, खंड–1, पृष्ठ–97)

डॉ. आंबेडकर ने हिन्दुओं के धर्मग्रंथ मनुस्मृति का निषेध करने हेतु 27 दिसंबर 1927 को महाड परिषद में प्रतिकात्मक रूप से मनुस्मृति को सार्वजनिक तौर पर जलाया। महाड की क्रांति द्वारा दलितों के मानव अधिकारों को प्राप्त करके सदियों पूरानी विषमतावादी अमानवीय जातिप्रथा के विनाश की घोषणा की गई। समता का यह विचार और सामाजिक आंदोलन को वैश्विक मानवी मूल्यों का आधार था। 'जाति का विनाश' 'फिलासौफी ऑफ हिन्दुइज्म' और 'बुद्व और उनका धम्म' जैसी विश्वप्रसिद्व रचनाओं द्वारा डॉ. आंबेडकर ने हिंदू धर्म के कर्मकांडी यथास्थितिवादी विचारधारा की सच्चाई को उजागर किया। मनुस्मृति को सार्वजनिक तौर पर जलाने के कार्यक्रम के समय उन्होंने अपने अभिभाषण में कहा

"मनुस्मृति एक साथ सवर्ण हिंदुओं के लिए अधिकार का घोषणापत्र और अछूतों के लिए दासता का बाइबिल है।" आगे वे कहते है "हमने मनुस्मृति इसलिए जलाई क्योंकि हम इसे अन्याय का एक प्रतीक मानते है जिसके अन्तर्गत हम सदियों तक दबाए कुचले गए है। मनुस्मृति की शिक्षा से हम अपार गरीबी और गहित स्थिति में रखे गए है, इसलिए जान हथेली पर लेकर हमने आक्रमण करने का खतरा मोल लिया है।"

'हिंदू धर्म का दर्शन' इस रचना में हिंदू धर्म की विषमतावादी, असहिष्णु तथा अन्यायपूर्ण सोच की प्रखर आलोचना की हैं। मनुस्मृति के कई उदाहरण देकर उन्होंने वर्णाश्रम धर्म की ब्राह्मणवादी व्यवस्था किस प्रकार विपरीत सक्रीय है। इस संबध में एक उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया।

"अछूत और शूद्रों को मात्र द्विजों की सेवा करने का आदेश दिया गया है उनकी आजीविका चुनने की स्वतंत्रता तक मनुस्मृति द्वारा छीन ली गई है।

जातिप्रथा में व्यवस्था या पेशों का निर्धारण जन्म आधारित है, कोई जाति अपना पेशा छोड़कर अन्य जाति के पेशे या व्यवसाय को अपना नहीं सकती क्योंकि धर्म इसकी अनुमति नहीं देता। व्यक्ति की बेरोजगारी का एक मूलभूत कारण सामाजिक भेदभावपूर्ण संरचना में स्थित है। डॉ. आंबेडकर का मत यहाँ विचारणीय है। "श्रम के विभाजन के रूप में जातिप्रथा द्वारा उत्पन्न श्रम का विभाजन छांट पर आधारित विभाजन नहीं है। इसमें वैयक्तिक भावना और वैयक्तिक वरीयता का कोई स्थान नहीं है। इसका आधार पूर्व–नियति का सिद्धांत है।" मानवनिर्मित धर्मग्रंथों द्वारा दिए गए आदेशों का उल्लंघन न किया जाए इसलिए इसे ईश्वर निर्मित विधि–विधान का झूठा प्रचार करके दलितों और स्त्रियों द्वारा विरोध की सभी आशंका से बचा लिया गया। इसलिए सामाजिक संरचना में दलित और स्त्री की स्थिति एक गुलाम से अधिक नहीं रहीं। "आर्थिक संगठन के रूप में जातिप्रथा एक हानिकारक व्यवस्था है, क्योंकि इसमें व्यक्ति की स्वाभाविक शक्तियों का दमन रहता है और सामाजिक नियमों की तत्कालीन आवश्यकताओं की प्रवृत्ति होती है।" दलितों के सामाजिक आर्थिक स्तर में बदलाव लाने हेतु किए गए संवैधानिक अधिनियमों के प्रावधान इस प्रकार के धर्मशासीत कानूनों के प्रभाव को नष्ट करके स्वतंत्र नागरिक के रूप में दलित स्त्री को आर्थिक अधिकार प्राप्त हो सके और देश के आर्थिक स्रोतों में उनकी बराबरी की भागीदारी रहें इसलिए कानूनी सुरक्षा की व्यवस्था रखी गई। जाति उत्पीड़न जैसे अन्यायपूर्ण व्यवहार द्वारा दलित–आदिवासियों के अधिकारों का हनन होने पर राज्यतंत्र संवैधानिक कानूनों को इमानदारी और दक्ष होकर लागू करता है तो शायद डॉ. आंबेडकर के अथक परिश्रम को भारतीय समाज द्वारा व्यवहार में उतारते हुए देखना संभव हो सकेगा।

मनु द्वारा रचित विधि–विधान ने ही नहीं बल्कि शूद्र–अतिशूद्रों को आर्थिक स्वतंत्रता और सुरक्षा से ज्ञान और शिक्षा से भी वंचित किया गया था।" डॉं आंबेडकर के अनुसार "हिंदू समाज को जाति के आधार पर इस हद तक बाँट दिया गया है कि अलग–अलग जाति के लोग न आपस में एक साथ मिल बैठकर खाते है, न आपस में एक दूसरे से विवाह करते हैं। जन्म, मृत्यु, विवाह और भोजन जैसे सुख–दुख के महत्वपूर्ण मौके पर उनमें आपस में कोई सहभागिता नहीं होती हैं। इस तरह हिंदू धर्म का दर्शन ही बन्धुत्व के मूल्य के विपरीत है।"

डॉं आंबेडकर हिंदू धर्म के दर्शन ब्राह्मणवाद की कठोर आलोचना ही नहीं करते बल्कि उसके विकल्प में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के मूल्यों की स्थापना करने वाले बुद्ध धम्म को अपनाकर दलितों को बुद्ध के समतावादी धम्म अपनाने का आवाह्न भी करते हैं। डॉ. डी. आर. जाटव के अनुसार बुद्ध धम्म का निर्णय तथा इसकी घोषणा डॉ. आंबेडकर ने येवला की एक सभा में "13 अक्टूबर, 1935 को की थी दलित वर्गों ने येवला में एक सभा की ताकि दस वर्ष पुराने संघर्ष और भावी संवैधानिक सुधारों की दृष्टि से देश की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति का जायजा लिया जा सके। सभा में कई लाख लोगों ने भाग लिया। उसी समय, एक समाचार फैल गया कि डॉ. आंबेडकर धर्म परिवर्तन करने वाले हैं। स्वागत समिति के अध्यक्ष रणखाम्बे ने प्रारंभ में ही कहा : ''पतनावस्था के हिंदूधर्म को सही रूप में ब्राह्मणवाद कहा गया है क्योंकि वह एक वर्ग के रूप में केवल ब्राह्मण स्तर को ही लाभ पहुँचाता है।"

तत्पश्चात, डॉ. आंबेडकर ने यह घोषणा की "दुर्भाग्यवश, मैं एक हिंदू अछूत के रूप में पैदा हुआ हूँ। उसे रोकना मेरी शक्ति के बाहर था, किन्तु यह मेरी शक्ति के अंतर्गत है कि मैं अधर्म एवं अपमानजनक स्थितियों में रहने से मना कर दूँ। मैं आपको निष्ठापूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि मैं एक हिंदू के रूप में नहीं मरूंगा।" (राष्ट्रीय आंदोलन में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका, पृ. 120)

हिंदू धर्म के ब्राह्मणवादी चरित्र को तार–तार कर देनेवाला उनका एक ग्रंथ 'हिंदू धर्म की शरारत' में ब्राह्मणवाद के झूठ को उजागर करते हुए वेदों की प्रमाणिकता और वर्ण–व्यवस्था को चुनौती दी हैं। डॉ आंबेडकर ने ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित किए गए इस झूठ से सभी को परिचित कराया और जनसाधारण और बुध्दिजीवियों को अवगत कराया उस सच्चाई से कि हिंदू धर्मावलंबी वेदों के धर्म–सिद्वांतों से भ्रमित किए गए।

डॉ आंबेडकर के अनुसार "सबसे अधिक शरारतपूर्ण धर्म–सिद्वांत, जो ब्राह्मणों ने साधारण हिंदूओं के लिए प्रचारित किया है, वह है वेदों के प्रामाणिक या अंतिम सत्य होने का सिद्वांत। इससे हिंदू बुद्वि का विकास अवरुद्व हो गया और हिंदू सभ्यता में ठहराव आ गया। भारत के विकास के लिए इसे जड़–मूल से नष्ट करना जरुरी है।"

हजारों वर्षों से चली आ रही सनातनी अंधविश्वास की परम्परा पर डॉ आंबेडकर ने करारा प्रहार किया और ब्राह्मणवाद के विरोध में बुद्धिवादी–मानवतावादी विचार और दृष्टि से संपृक्त सामाजिक परिवर्तन की और एक सशक्त कदम बढ़ाया । महाड तालाब का सत्याग्रह, कालाराम–मंदिर प्रवेश का सत्याग्रह, पुना के पर्वती मंदिर का सत्याग्रह, अमरावती के अंबाबाई मंदिर प्रवेश सत्याग्रह, महाड में मनुस्मृति जलाकर विरोध प्रदर्शन आदि सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलन अछूतों के छीने गए अधिकारों को प्राप्त किए जाने का जबरदस्त प्रयास था। आंदोलन से जगी चेतना का विकास दलितों के प्रखर संघर्ष के रूप में आधुनिक भारत में आज भी जारी है।

पहली बार दलित–वंचितों में जगे आत्मबोध की अभिव्यक्ति हम लगातार दलितों द्वारा किए गए संघर्षों, में देख रहे हैं। अस्मितावादी साहित्य की धारा का विकास डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी की रचनात्मक अभिव्यक्ति है। मानव अधिकार, अस्मिता के सवाल, आर्थिक भागीदारी, उत्पीड़न–अत्याचारों का पूरजोर विरोध, सुरक्षीतता की माँग, रोजगार गैरंटी की माँग, देश के विकास के लाभ में पारदर्शिता, नीति को इमानदारी से लागू करने की माँग, नीति निर्माण संस्थाओं में प्रतिशतनुसार भागीदारी, राजनीतिक भागीदारी, स्त्री आरक्षण की माँग आदि सिधे तौर पर डॉ. आंबेडकर की वैचारिकी के प्रभावस्वरूप जागृत चेतना के विकास का अगला चरण है।

8.3 समाजवादी जनतंत्र का विचार

डॉ. आंबेडकर की भारतीय सामाजिक संरचना की परिकल्पना लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित है। भारत के संविधान निर्माता और भारत के पहले मंत्रीमंडल में कानून मंत्री के रूप में डॉ. भीमराव आंबेडकर हमेशा से चाहते थे कि भारतीय सामाजिक संरचना का आधार लोकतांत्रिक हो, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति व विकास के अधिकाधिक अवसर प्राप्त हो तथा उनके आत्मसम्मान और मानव अधिकारों की रक्षा हो। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के कारण उत्पन्न जातिगत विभाजन, ऊँच–नीच की भेदभावपूर्ण सोपानीकृत रचना व्यक्तियों के बीच सामाजिक–सांस्कृतिक और आर्थिक संबंधों को वर्णश्रेष्ठता के आधार पर निश्चित करती है। मानवता को अपमानित करनेवाली घृणित परंपरा के विरोध द्वारा उन्होंने समतामूलक सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना की थी।

डॉ. आंबेडकर की दूर दृष्टि ही थी कि उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक ढाँचे में वर्ण–जाति की दखल को नकारकर समतावादी राजनैतिक प्रजातंत्र के मजबूत आधार की आवश्यकता को महत्व दिया। उनका दृढ़ विचार था कि राज्य में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांत पर व्यक्ति–व्यक्ति के बीच राजनैतिक संबंधों के नियमन एवं राजनैतिक गतिविधियों के संचालन की यह सबसे प्रभावपूर्ण पद्धति है।

डॉ. आंबेडकर व्यक्ति और समाज के बीच के संबंधों को समतामूलक तत्वों के अनुसार संचालित एवं नियमित करने में राज्य की भूमिका को महत्व देते हैं।

वे इस बात से सहमत थे कि राज्य की भूमिका व्यक्ति और समाज के उद्देश्यों की पूर्ति का साधन है, साध्य नहीं। व्यक्ति और समाज में सौहार्द, शांति, सुरक्षा, विकास के साधनों का सही बंटवारा, उत्पादन के साधनों में सभी की भागीदारी रोजगार तथा संपत्ति के अधिकार मिलने की संभावना और अवसरों को देने तथा नियमन दायित्व राज्य का है। व्यक्ति विकास में सभी को अवसर मिले इसकी चिंता भी राज्य की होनी चाहिए। इसलिए आंबेडकर "राज्य सत्ता और व्यक्ति की स्वतंत्रता में सामंजस्य लाये जाने के पक्षधर थे।" (कुबेर, संपा) विचार, अभिव्यक्ति तथा पेशे के चुनाव की स्वतंत्रता व्यक्ति के मुलभूत अधिकार है जिन्हें राज्य द्वारा सुरक्षित रखा जाना अपेक्षित है। डॉ. आंबेडकर की मान्यता थी कि व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा का दायित्व राज्य एवं सरकार का है। राजनैतिक प्रजातंत्र की सफलता के लिए उन्होंने चार मान्यताओं को अनिवार्य बताया है जिन्हें क्रमवार देखें–

1. व्यक्ति विकास को सबसे अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
2. व्यक्ति के सभी अधिकारों की सुरक्षा का प्रावधान संविधान में होना चाहिए।
3. व्यक्ति पर किसी भी प्रकार से कोई दबाव नहीं हो, जिसके कारण व्यक्ति संवैधानिक अधिकारों से वंचित हो जाए।
4. राज्य कुछ विशेष व्यक्ति या समुदाय को अन्य व्यक्ति या समुदायों पर शासन करने या नियंत्रण में रखने के अधिकार न दे।

राजनैतिक प्रजातंत्र के लिए इस प्रकार के ढाँचे की परिकल्पना डॉ. आंबेडकर के चिंतन का महत्वपूर्ण हिस्सा है। उनके विचार में व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोपरी होनी चाहिए, तभी राजनैतिक प्रजातंत्र सफल प्रजातांत्रिक राज्य की भूमिका का निर्वाह कर सकेगा। लेकिन यह अंतिम रूप से उनकी परिकल्पना का हिस्सा नहीं रहा। लोकतंत्र को उन्होंने राजनैतिक प्रजातंत्र से अधिक महत्वपूर्ण माना क्योंकि अन्य व्यवस्थाओं की तुलना में यह व्यक्ति को स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्रदान करती है। वे इस बात से आश्वस्त नहीं थे कि राजनैतिक प्रजातंत्र प्रत्येक नागरिक का अपना मत होने का समान अधिकार और अवसर देने के बावजूद वह व्यक्ति के समानता के अधिकारों की हिफाजत संवैधानिक रूप से कर पाएगा। वे इस तथ्य को हमेशा उजागर करते रहें कि "जो लोग पीढ़ियों से शोषित वंचित और कमजोर रहे हैं वे समानता के इस प्रावधान का वांछित लाभ नहीं उठा पाते। जो लोग पहले से ताकतवर होते हैं वे कम ताकतवर लोगों की तुलना में अधिक लाभ उठाते हैं। (सिंह, 1992:30)

"ऐसी हालत में यदि कमजोर लोगों को संविधान के माध्यम से विशेष सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तो समानता के अधिकार का उनके लिए कोई व्यवहारिक अर्थ नहीं रह जाता। ऐसी दशा में स्वतंत्रता समानता को निगल जाती है और प्रजातंत्र, प्रजातंत्र नहीं मात्र उसका दिखावा रह जाता है।" आंबेडकर (संक, भगवान दासः1963:46) जब तक समाज के कमजोर वर्ग को विशेष रूप से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान के माध्यम से सुरक्षा के संवैधानिक उपाय नहीं किए जाएंगे तब तक लोकतंत्र को वास्तविक रूप नहीं दिया जा सकेगा। डॉ. आंबेडकर (1947) भारत की वर्ण–जाति व्यवस्था में सवर्ण के वर्चस्व को राजनैतिक जनतंत्र में कम करने में कामयाब नहीं हो पाएगा और दलितों, वंचितों, आदिवासियों की गुलामी से मुक्ति की संभावना नहीं होगी।

डॉ. आंबेडकर के चिंतन का आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के मूल्यों पर आधारित समाज है और इसके लिए उन्होंने निश्चित रूप से संविधान के माध्यम से सुरक्षा उपाय किए जाने पर जोर दिया। जब वे संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष थे तो उन्होंने संविधान सभा के समक्ष संविधान का जनतांत्रित ढाँचा प्रस्तुत किया जिसके लिए एक मनुष्य एक मूल्य के सिद्धांत को अपनाया गया।

8.4 डॉ. आंबेडकर का नारी संबंधी चिंतन

दलित–शोषित के अधिकारों के संघर्ष के साथ ही डॉ. आंबेडकर ने स्त्री अधिकारों के लिए संघर्ष किया। भारतीय सामाजिक संरचना में अछूत और स्त्री को शिक्षा, संपत्ति और समानता के अधिकारों से वंचित रखने के लिए वर्चस्ववादी शक्तियों ने मनु द्वारा धार्मिक दर्शन गढ़ा था। स्त्रियों के लिए नैतिकता के बंधनों का ऐसा जाल बुना गया था कि वह बचपन से लेकर मृत्यु तक मात्र पितृसत्ता पर निर्भरता को ज्ञान की परंपराओं से वंचना को कानूनी जामा मनु ने मनुस्मृति ग्रंथ द्वारा प्रदान किया। मनुस्मृति हिंदू धर्म का विधि–विधान (कानून की पुस्तक) है जिसमें वैदिक काल में स्त्री को हासिल स्वतंत्रता, सम्मान, ज्ञान प्राप्ति का अधिकार, संपत्ति में अधिकार, पूनर्विवाह का अधिकार, वयस्कता प्राप्ति के पश्चात विवाह का अधिकार, तलाक का अधिकार आदि पर निर्बंध लगा दिए। स्त्री को समता, स्वाधीनता और आत्मबोध के अवसर से वंचित कर दिया। स्त्री की इस स्थिति के प्रति भारतीय हिंदु समाज कभी चिंतित नहीं दिखा। इसे धार्मिक रूढ़ी–परंपरा के रूप में अपनाकर पुरुषसत्ता सदैव वर्चस्व का सुख पाता रहा। सर्वप्रथम इस ओर ध्यान डॉ. आंबेडकर का ही गया। उन्होंने 'हिंदू स्त्री का उत्थान और पतन' इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से लिखा। डॉ. आंबेडकर ने आधुनिक भारत की नारी की स्थिति में सुधार के लिए किए प्रयास न केवल ऐतिहासिक, मूल्यवान और मुलभूत महत्वपूर्ण है, बल्कि भारत के संदर्भ में ही नहीं विश्व के संदर्भ में अतिप्रगतिशील है। उनके इन प्रयासों को हमें दो भागों में बाँटकर देखना होगा। पहला सैद्धांतिक स्तर पर किया गया प्रयास है और दूसरा व्यवहारिक एवं क्रियान्वयन के स्तर पर लागू करने का प्रयास। डॉ. आंबेडकर की शोधपरक और विश्लेषणात्मक दृष्टि ने सर्वप्रथम भारतीय नारी की स्थिति में हुए पतन के कारणों को जानने का प्रयास किया। इसी शोध के आधार पर उन्होंने 'हिंदू नारी का उत्थान और पतन' नामक किताब में वैदिक समय में नारी के उत्थान को रेखांकित करते हुए ऐतिहासिक तथ्यों का उपयोग किया और बताया कि "भारत में जिस काल में नारी की स्थिति सम्माननीय और बराबरी की थी उस काल में समाज विकासशील था। जब नारी की स्थिति अवनत हुई तो समाज पतन की स्थिति में पहुँच गया।" उनका कहना था कि 'मैं किसी भी समाज की प्रगति इस आधार पर मापता हूँ कि उसमें नारी ने किस सीमा तक प्रगति की है। डॉ. आंबेडकर के अनुसार "मनु द्वारा नारी विरोधी कानून बनाने के दो कारण थे। पहला था बौद्ध धर्म के समता, स्वतंत्रता और न्याय के दर्शन से प्रभावित होकर समाज के शूद्र–अतिशूद्र और नारी वर्ग द्वारा बौद्ध धर्म अपनाया जाना। तथागत गौतम बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना करके स्त्री को ज्ञान परंपरा से जुड़ने का अवसर प्रदान किया। यह अभूतपूर्व प्रयास स्त्री स्वतंत्रता के लिए लिया गया अति प्रगतिशील कदम था।" बुद्ध धर्म में भिक्षुणी संघ की विदुशी भिक्षुणियों को 'थेरी' कहा जाता था और उनके द्वारा लिखे गए अनुभवों के संकलन को 'थेरी गाथा' के नाम से जाना जाता है। स्त्री लेखन परंपरा का यह प्रथम ग्रंथ माना जाता है। मनु ने हिंदू धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए शूद्र – अतिशूद्र एवं नारी को शिक्षा से और आत्मबोध विकसित होने के अवसरों से वंचित किया और इसे धर्म के आदेश के रूप में लागू किया। धर्मादेश को तोड़ने पर प्राणदंड, जिव्हा काटने, कान और मुख में पिघलता शीसा भरने जैसे दंड का विधान रखा गया। यह इसलिए की ब्राह्मण श्रेष्ठता पर आधारित वर्ण–जाति व्यवस्था को यह वर्ग

कही चुनौती न दे सकें। दूसरा कारण नारी की स्वतंत्रता ब्राह्मणवाद के वर्चस्व के लिए कही चुनौती न बन सके, क्योंकि स्त्री स्वतंत्रता ऊँच–नीच के भेदभाव की दीवारों को तोड़ कर अपने मनचाहे पुरुष से विवाह की माँग करती है। ब्राह्मण वर्ग ने इसलिए सबसे प्रथम वर्ण के बाहर शादी–विवाह का निषेध लगा दिया। जिसके पीछे वर्णसंकर से रक्तशुद्धता को बचाए रखने की अवैज्ञानिक सोच रही है। मनु ने अंतर्जातीय विवाह पर पाबंदी लगाने की दृष्टि से ही नारी स्वतंत्रता को छीन लिया। सभी पाबंदियों को धर्म के दायरे में लाकर इसे विधि–विधान का कठोर रूप दे दिया गया।" (हिंदू नारी का पतन एवं उत्थान–डॉ. आंबेडकर) हिंदू नारी की अधीन और दासी सदृश्य स्थिति को निर्धारित करने का कार्य हिंदू धर्म के विधि विधान मनुस्मृति द्वारा किया गया। डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में महाड में सार्वजनिक रूप से मनुस्मृति को जलाने के पीछे उनके दो उद्देश्य रहे हैं। एक दलित–शोषितों और नारी के लिए अभिशाप के रूप में रची गई मनुस्मृति के विधि–विधानों का निषेध और दूसरा समाज के इस हाशियागत वर्गों की मुक्ति के लिए संघर्ष और इनके उत्थान के लिए सुनियोजित कार्यक्रम तय करना। इस महान उद्देश्य की परिपूर्ति का अवसर 'संविधान मसौदा समिति' के अध्यक्ष के रूप में उन्हें जल्द ही मिला। नारी मुक्ति के प्रति उनके प्रगतिशील विचार भारत के संविधान के रूप में हमारे सामने प्रकट हुए हैं। डॉ. आंबेडकर के जीवन का प्रमुख लक्ष्य रहा है समाज में सदियों से पीड़ित व शोषित दलित, आदिवासी, पिछड़ा वर्ग, तथा नारी के हितों की रक्षा करना। इसीलिए संविधान के प्रमुख शिल्पकार ने सर्वप्रथम संविधान के माध्यम से दलित और नारी को धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक अधिकार प्राप्त हो इसलिए संविधान में ही प्रावधान किए। जिससे कि वे अन्य वर्गों के समकक्ष खड़े होकर स्वतंत्रता, समता और न्याय को हासिल कर सकें।

आप ने भारतीय संविधान के घोषणा पत्र को पढ़ा होगा जिसमें प्रथम पृष्ठ पर स्पष्ट रूप से यह घोषणा की गई है कि 'भारतीय संविधान सभी नागरिकों को जन्म, लिंग, वंश, धर्म आदि के भेदभाव के बिना स्वतंत्रता व समानता प्रदान करता है।' समान सामाजिक, राजनैतिक तथा वैधानिक अधिकारों के प्रावधान के साथ संविधान में कई विशेष उपबंध हैं। जो सुनिश्चित करते हैं कि नारी अधिकारों को वास्तविक रूप में लागू करके समाज में उन्हें सम्मानजनक स्थान प्राप्त हो सकेगा। आइए जान ले कि वे कौन से संवैधानिक प्रावधान है जिनके द्वारा नारी समता और स्वतंत्रता और न्याय पाने की हकदार हो सकें।

संविधान का अनुच्छेद 15 (2) नारी को सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश तथा सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग का अधिकार प्रदान करता है। इसमें विशेष कानून बनाकर महिलाओं को समानता प्रदान करने का प्रावधान भी शामिल है। संविधान के अनुच्छेद 16(2) के अंतर्गत सरकारी नौकरियों में स्त्रियों को पुरुषों के साथ समानता तथा 19 (1) के अंतर्गत नारी को विविध स्वतंत्रता प्रदान किए जाने का प्रावधान किया गया है।

संविधान का अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष नारी को पुरुष के बराबर का दर्जा प्रदान करता है। अनुच्छेद 15 (1) लिंग के आधार पर नारी के साथ भेदभाव का अंत करता है। अनुच्छेद 15 (3) राज्य द्वारा स्त्री को सुरक्षा देने की सुनिश्चितता प्रदान करता है। अनुच्छेद 15 (325) में नारी को पुरुष के समान राजनैतिक अधिकार प्रदान करता है। इनके अतिरिक्त संविधान के अनुच्छेद 51 (अ) (ड़) के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक के एक कर्तव्य के रूप में यह निर्धारित किया गया कि वह ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है। (डॉ. भारती–113) भारतीय संविधान में भारत की नारी को सम्मान, सुरक्षा, रोजगार की सुनिश्चितता, लिंग आधारित समानता, समता और स्वतंत्रता, राजनैतिक अधिकार तथा पूर्व परंपरागत रूढ़ि–रीतियों से मुक्ति दिलाने के कानूनी

प्रावधान है। यदि संवैधानिक सुरक्षितता स्वतंत्रता और समानता के प्रावधानों को भारतीय राज्य कर्तव्यपरायणता, दृढ़ता, संवेदनशीलता तथा प्रामाणिकता से लागू करें, तो भारतीय स्त्री शक्ति सामाजिक–आर्थिक पुनर्निर्माण में जुट कर देश की तस्वीर को बदल सकती है। डॉ. आंबेडकर देश के निर्माण–विकास और प्रगति में नारी योगदान को पूर्णरूपेण सम्मिलित करने तथा नारी सशक्तिकरण के पक्ष में थे। भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक तथा धार्मिक स्थितियों के गहन अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर डॉ. आंबेडकर का आकलन सही था कि 'जब तक संवैधानिक तौर पर नारी उत्थान के लिए सशक्त प्रावधान नहीं किए जाएंगे, संभवतः नारी की स्थिति में परिवर्तन लाना अशक्य है। भारतीय संविधान द्वारा नारी एवं शोषित–दलित वर्गों के लिए किए गए प्रयास महत्वपूर्ण और मूलभूत हैं। संविधान मसौदा समिति के अध्यक्ष और संविधान के शिल्पकार की महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करके उठाए गए प्रगतिशील जनतांत्रिक प्रयासों का ही परिणाम है कि नारी की स्थिति में सुधार हुआ है। देश की प्रगति में स्त्री एक सार्थक रूप में अपना योगादान दे सकें, इसलिए अनेक कानूनी प्रावधान करने की जरूरत थी। स्त्री को सामाजिक और आर्थिक स्तर पर सक्षमता प्रदान किए बिना यह संभव नहीं था।

8.4.1 हिंदू कोड बिल : नारी उत्थान की क्रांतिकारी पहल

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू कानून व्यवस्था में परिवर्तन लाने हेतु उठाए गए क्रांतिकारी कदम के रूप में हिंदू कोड बिल की रचना की। भारतीय इतिहास में स्त्री की उन्नति के लिए वैधानिक रूप से किया गया यह प्रयास शायद पहला ही था। इस बिल में स्त्रियों के लिए पहली बार आर्थिक अधिकारों की सुनिश्चितता का प्रावधान किया गया। इस बिल में बालविवाह पर प्रतिबंध तथा जीवन साथी के चुनाव एवं अन्तर्जातीय विवाह का अधिकार, तलाक का अधिकार, संपत्ति पर अधिकार तथा गोद लेने एवं संरक्षकता के अधिकार का प्रावधान किया गया था। भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक संरचना में यह बिल क्रांतिकारी परिवर्तन की ओर बढ़ाया गया एक कदम था। हिंदू नारी ने सदियों से झेली वंचनाओं को समाप्त करने का यह संवैधानिक प्रयास था। अभी तक अवरूद्ध किए गए मार्ग को प्रशस्त कर नारी को उन्नति की ओर ले जाने वाले इस प्रगतिशील बिल को संसद में सर्वानुमति से पास होने में कोई दिक्कत नहीं आनी चाहिए थी। परन्तु भारत की आजादी के बाद भी नारी की आजादी को लेकर समाज में एकमत नहीं था। तत्कालीन संसद में और संसद के बाहर हिंदू कोड बिल को लेकर विरोध किया जाने लगा। विरोध के अनेक कारण सामने आए थे जिनमें मुख्यतः हिंदू परिवार के टूटने का भय सर्वाधिक रूप से हिंदू विचारधारा के संगठनों द्वारा अभिव्यक्त किया गया।

बिल के विरोध में अभिव्यक्त प्रतिकियाएं

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का भारतीय संविधान समिति के अध्यक्ष बनने पर मद्रास भारतीय महिला असोसिएशन संस्था द्वारा 26 अप्रैल 1949 को उन्हें सम्मान पत्र देकर उनका सम्मान किया था। महिला संस्था द्वारा रखे गए प्रस्ताव में कहा गया था कि 'राष्ट्र के सभी नेतागण लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत 'हिंदू कोड बिल' को कानून के रूप में प्रस्तुत करने का सम्मिलित प्रयास करें और जल्द से जल्द यह बिल एक कानून के रूप में पारित हो सकें।' सम्मान समारोह के अपने भाषण में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था।

''महिला संगठनों ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के इस यथास्थितिवादी विचार की कठोर शब्दों में आलोचना की थी।

डॉ. पट्टाभिसीतारमय्या ने भी इसी प्रकार पूर्व परंपराओं की पक्षधरता में अपना विरोध दर्ज किया था। हिंदू कोड बिल के विरोध में बहुत सारे विरोधक खड़े हो गए थे। स्त्री को प्राप्त होने वाले मूलभूत अधिकारों का उन्होंने इसलिए भी विरोध किया क्योंकि उनका हिंदू धर्म

में विश्वास और स्त्री की दोयम स्थिति को परंपरा के रूप में मान्यता। डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी का तो संपूर्ण परिवार ही हिंदू कोड बिल के विरोध में उठ खड़ा हुआ था। डॉ. मुकर्जी की माँ ने कुछ एक हिंदू संगठनों की महिलाओं को साथ लेकर संसद के बाहर हिंदू कोड बिल के विरोध में प्रदर्शन किए। डॉ. मुकर्जी संसद के अंदर बिल का जबरदस्त विरोध कर रहे थे। उनके विरोध का सार इस प्रकार था 'इस देश के इतिहास में, हिंदू कोड बिल का देश भर में जैसा विरोध हुआ, वैसा पहले कभी नहीं हुआ।' (डॉ. अंबेडकर ने क्या किया? एल. आर. बाली, पृ. 215)। उन्होंने आगे कहा था।

''मैं मानता हूँ कि पूरातन विचार परंपरा में मेरी आस्था है, मेरा विचार आपको यथास्थितिवादी लग सकता है। लेकिन म. गांधी के विचारों का मैं अनुसरण करता हूँ। उनके अनुसार असत्य के प्रभाव से दूर रहते हुए इस संसार को आपने जिस रूप में समझा है उसी के अनुसार आचरण करें। हिंदू कोड बिल का समर्थन करने का अभिवचन मैं आपको दे नही सकूंगा। यह निर्णय मैंने बिल के अच्छे या बुरे होने की परीक्षा के आधार पर नहीं लिया है। संविधान परिषद ही विधि मंडल के रूप में कार्यभार संभाले हुए है लेकिन प्रस्तुत बिल को कानून बनाए जाने का अधिकारपत्र राष्ट्र द्वारा इसे प्राप्त नहीं है। इस कार्य को जिस समिति को सौंपा नहीं गया उसके द्वारा अकस्मात और उत्पाति बदलाव लाने वाले बिल को मंजूरी देने में मैं अक्षमता व्यक्त करता हूँ। थोड़ी सी महिला संस्थाओं ने प्रस्तुत बिल का समर्थन किया है परंतु बहुसंख्यक महिलाओं ने इस पर अभी विचार भी नहीं किया। हमें मात्र प्रगतिशीलों के विचारों को ही नहीं बल्कि जो सुधारवादी विचारों से परिचित नहीं अप्रगतिशीलों के मतों को देखना होगा।"

श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने जनसंघ की स्थापना की थी और वे चार वर्ष तक नेहरु मंत्रीमंडल में मंत्रीपद पर कार्यरत थे, हिंदू कोड बिल का विरोध करते हुए उन्होंने कहा "हिंदू कोड बिल में सांस्कृतिक विवाह को धार्मिक विवाह बना दिया गया है। हिंदू समाज अनेक कठिनाइयों और भयंकर विषमताओं के बावजूद हजारों वर्षों से जीवित है। क्या विश्व में ऐसा कोई देश है जिसके समाज का, जबरदस्त हमलों के बावजूद, ढांचा बदला नहीं। हिंदू कोड बिल के समर्थक हिंदू धर्म के उस स्रोत ही को समाप्त कर रहे हैं, जिसने अनेक पीढ़ियों को जीवन व्यतीत करने का इतना विशाल मौका दिया। आप कहते हैं यह एक प्रगतिशील कदम है। मैं कहता हूँ कि यह एक पिछड़ाने वाला उपाय है। सभी लोगों पर हिंदू कोड बिल को मत थोपो, इसे सभी पर मत लागू करो" 'हिंदू कोड बिल' वास्तविक रूप में भारतीय हिंदू स्त्री के लिए एक प्रगत भविष्य लेकर आनेवाला संवैधानिक कानून बनने जा रहा था। दासत्व और निर्भरता से मुक्त कर उन्हें प्रगति की ओर ले जाने वाला क्रांतिकारी कदम था। लेकिन श्यामाप्रसाद मुकर्जी जैसे हिंदू धर्मावलंबी स्त्री को दासता से मुक्त करने के पक्ष में कदापी नहीं रहे।

अन्य विरोधकों में सांसद नजरुद्दीन अहमद, बाबूराम नारायण सिंह, श्यामनंदन सहाय आदि प्रमुखता से शामिल रहें।

नजीरुद्दीन अहमद का मत था कि "हिंदू कोड बिल संयुक्त परिवार की प्रथा को समाप्त कर देगा। कहा जा रहा है कि ये बिल वैदिक स्मृतियों में दर्ज साहित्य, जो दैवी–मूल के है, के विरुद्ध है। यह हिंदुओं की धार्मिक नीव और धार्मिक रचना को बर्बाद कर देगा। (डॉ. आंबेडकर ने क्या किया? एल.आर. बाली, पृ. 215) 'हिंदू धर्म खतरे में है' के जबाव में वरिष्ठ कांग्रेस नेता और हिंदू कोड बिल के समर्थक आचार्य कृपलानी ने कहा था" हिंदू धर्म खतरे में हैं, इस बाबत बहुत कुछ कहा गया है मुझे इसमें कोई तुक नजर नहीं आता। जब हिंदू चोर होते हैं, जब वे बदमाशी करते हैं, जब वे काला बाजारी करते हैं, जब वे रिश्वतें लेते हैं तब हिंदू धर्म खतरे में नहीं पड़ता किन्तु जब किसी विशेष कानून को

सुधारने का यत्न किया जाता है, तो सुधारकों के बारे में कहा जाता है कि वे हिंदू धर्म को खतरे में डाल रहे हैं।"

डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने मंत्रिमंडल की बैठक में हिंदू कोड बिल के विरोध में कुछ नहीं कहा किन्तु जब संसद में बिल पर बहस हुई तो उन्होंने बिल का विरोध करने में एड़ी–चोटी का जोर लगा दिया। उसे उत्तर देते हुए डॉ. आंबेडकर ने कहा था "जहाँ तक डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी का संबंध है, मैं महसूस करता हूँ कि उनके विरोध को कदापि गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। मुझे प्रतीत होता है कि उनका अपना निजी कोई मत नहीं है। मेरे विचार में उनका मामला बहुत दुःखद है, कारूणिक है। यह इसलिए दुःखद है कि वे संतुलित, संयमी, अच्छा बर्ताव करने वाले व्यक्ति हैं किन्तु गलत लोगों के प्रभाव में पड़कर इधर से उधर पासा पलटते हुए उन्होंने खुद ही संतुलन खो दिया है।" (वही, पृ. 217)

जवाहरलाल नेहरु भी हिंदू कोड बिल को हो रहे विरोध से पीछे हटे, वे भी चाहने लगे थे कि बिल के विवाह और तलाक के हिस्सों को अलग करके पेश करना चाहिए। हिंदू कोड बिल अंततः विरोधियों के विरोध का शिकार हो गया।

भारतीय नारी के लिए उन्नति के अवसर देनेवाला तथा आर्थिक रूप से सक्षम बनाने वाले और विवाह में अपना मत व्यक्त करने तथा तलाक का अधिकार देनेवाले इस बिल को दफना दिया गया। समाज के अधिकांश वर्गों द्वारा हिंदू स्त्री–विरोधी इस रवैये से निराश होकर डॉ. आंबेडकर ने नेहरू मंत्रिमंडल से 10 अक्टूबर, 1951 को त्याग पत्र दे दिया।

बाद में 1955–56 में हिंदू कोड बिल को चार विभागों में बाँटकर में टुकड़ों–टुकड़ों में पारित किया गया। वे चार विभाग इस प्रकार हैं–

1. हिंदू उत्तराधिकार कानून 1956
2. हिंदू विवाह विषयक विधि 1955
3. हिंदू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण कानून 1956
4. हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता कानून 1956

इन सभी कानूनों के पास होने से लाभ हिंदू नारी को ही होना था और हुआ। नारी को पिता तथा पति की संपत्ति में अधिकार मिला, दत्तक लेने का, भरण–पोषण प्राप्त करने का और जाति से बाहर विवाह करने का अधिकार प्राप्त हुआ। हिंदू कोड बिल जैसा प्रगतिशील कानून तैयार करके प्रखर विरोध के बावजूद संसद में प्रस्तुत करने के दृढ़ संकल्प और क्रांतिकारी दृष्टिकोण के कारण डॉ. आंबेडकर को स्त्री मुक्ति का योद्धा कहा जाता है।

8.5 डॉ. आंबेडकर का धर्म संबंधी चिंतन

भारत के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु के मंत्री मंडल में डॉ. आंबेडकर कानून मंत्री बनने के कुछ ही समय बाद उन्हें भारत के संविधान निर्माण समिति के अध्यक्ष चुन लिया गया। संविधान निर्माण की जटिल प्रक्रिया के दौरान ही डॉ. आंबेडकर हिंदू कोड बिल के बारे में सोच रहे थे। भारतीय सामाजिक संरचना में हिंदू स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की होने का कारण हिंदू धर्म व्यवस्था में शिक्षा, संस्कृति और आर्थिक संसाधनों से वंचित कर सदियों से हाशिए पर धकेल दिया गया है। भारतीय संविधान जाति, धर्म, लिंग, भाषा, क्षेत्र के आधार पर स्त्री तथा पुरुषों को (नागरिक) समान अधिकार प्रदान करता है तब हिंदू स्त्री सदियों पूरानी परंपराओं के व्यवहारिक प्रचलन के कारण एक नागरिक के अधिकारों

से क्यों वंचित है? हिंदू स्त्री की दयनीय स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए हिंदू कानून को बदलकर उसमें प्रगतिशील विचारों के बरक्स कानूनी बदलाव लाने के लिए डॉ. आंबेडकर प्रतिबद्ध थे। इस संबंध में उन्होंने कहा था "इतिहास इस प्रस्ताव को बल देता है कि राजनीतिक क्रांतियाँ हमेशा सामाजिक और धार्मिक क्रांतियों के बाद हुई हैं। यदि शक्ति और प्रभुत्व के स्रोत किसी विशेष समय अथवा किसी विशेष समाज में सामाजिक तथा धार्मिक है तो सामाजिक सुधार और धार्मिक सुधार को आवश्यक सुधार के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।" (डॉ. आंबेडकर, संपूर्ण वाड़मय, खंड–1, पृ. 43–45)

हिंदू कोड बनाए जाने की जरूरत पर कई सांसदों ने संसद में अपने विचार अभिव्यक्त किए गए। डॉ. बी. वी. केसकर के महत्वपूर्ण सूझाव को इस संदर्भ में देखना जरूरी है "हिंदू कानून को संहिताबद्ध करने की तुरन्त आवश्यकता है। इस समय हिंदू कानून एक उलझन है, यह एक जंगल की तरह है, जिसमें पुराणों में दर्ज सभी प्रकार की प्रथाएं और परंपराएं शामिल है। अनेक क्षेत्रों और प्रांतों में जाति–उपजातियों के रीति–रिवाज अपना–अपना रोल अदा करते हैं। ऐसी हालत वकीलों के लिए लाभदायक बनी हुई हैं।

भारत के प्रसिद्ध विधि–विशेषज्ञ डॉ. हरिसिंह गौड ने हिंदू कोड बनाए जाने की जरूरत ही नहीं बल्कि निर्माण करने वाले विद्वान के प्रति यह वक्तव्य देते हुए कहा था "हिंदू कोड बनाने वाला, एक न एक दिन कोई अवतार जरूर आएगा। " उनके इस कथन की पुष्टि में सांसद गोकलभाई दौलतराम भट्ट ने डॉ. आंबेडकर द्वारा हिंदू कोड बिल के निर्माण पर संसद में कहा था "डॉ. आंबेडकर के रूप में वह अवतार प्रकट हो गया है और उसने हिंदू कोड बिल प्रस्तुत कर दिया है।"

नारी उत्थान में एक प्रगतिशील कदम के रूप में हिंदू कोड बिल की उन्होंने रचना की थी, हिंदूवादी समूहों एवं सांसदों के भारी विरोध के कारण संसदीय सभा में बिल के पारित न होने से वे अत्यंत उदास एवं निराश हो चुके और कानून मंत्री के पद से उन्होंने 1952 में इस्तिफा दे दिया। उन्हें यह अपेक्षा थी कि नारी प्रगति के लिए स्वतंत्र भारत में उठाए गए इस कदम का हिंदू संगठनों, समूहों, धार्मिक संस्थाओं और सांसदों द्वारा स्वागत किया जाएगा। लेकिन हिंदू धर्मावलंबियों का ब्राह्मणवाद में गहरे विश्वास के कारण नारी को प्राप्त होने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा धार्मिक अधिकारों का विरोध दर्शाया। डॉ. आंबेडकर राजनीतिक क्षेत्र से कुछ समय तक दूर रहकर हिंदू धर्म तथा उसके व्यवहार पर गहन अध्ययन–मनन तथा विश्लेषण में व्यस्त रहें। उन्होंने अनेक ग्रंथों की योजना बनाई थी जिसे वे संविधान निर्माण की व्यस्तता के कारण पूरा नहीं कर सके थे। इस अवकाश समय में उन्होंने 'बुद्ध और उनका धम्म' जैसे मूल्यवान ग्रंथ लेखन का कार्य पूर्ण किया। 13 अक्टूबर 1935 में येवला की सार्वजनिक सभा में डॉ. आंबेडकर ने कई लाख लोगों के समक्ष धर्म परिवर्तन की घोषणा की थी ''दुर्भाग्यवश, मैं एक हिंदू अछूत के रूप में पैदा हुआ हूँ कि मैं एक हिंदू के रूप में नहीं मरुँगा।'' (धनंजय कीर, डॉ. आम्बेडकर–लाइफ एण्ड मिशन, पृ. 251)

डॉ. आंबेडकर की इस निर्णायक घोषणा के पीछे दलित जीवन अनुभवों की एक विस्तृत पृष्ठभूमि थी। इस घोषणा का स्वागत अछूत वर्ग के अलावा बहुत बड़े सवर्ण वर्ग ने भी किया था क्योंकि वे डॉ. आंबेडकर के साथ दलित मुक्ति आंदोलन में सहभागी थे। धर्म परिवर्तन की घोषणा के लिए वे कौन सी स्थितियाँ कारणभूत रही है उन्हें हम जान लें। दलितों को हिंदू समाज के एक सम्माननीय हिस्से के रूप में सम्मिलित किए जाने तथा उन्हें वे तमाम नागरिक अधिकार प्राप्त हो सकें जिसके वे हकदार थे, के लिए मुक्ति संघर्ष का आरंभ डॉ. आंबेडकर ने 1920 से किया था। महाड का ऐतिहासिक 'चवदार तालाब का संघर्ष' 'कालाराम मंदिर प्रवेश का संघर्ष,' 'मताधिकार के लिए भारी संघर्ष' करने के

बावजूद उन्हें कट्टरपंथी तथा प्रतिक्रियावादी तत्वों के विरोध का सामना करना पड़ा। सवर्ण हिंदुओं ने अछूतों के शोषण अपमान और सामाजिक निष्कासन को धर्मसम्मत माना तथा जन आंदोलन और जनभावनाओं को लगभग तिरस्कार पूर्ण नजरिए से अस्वीकार किया। म. गांधी द्वारा अछूतों के राजनीतिक अधिकारों के खिलाफ़ आमरण–अनशन, पूना पैक्ट का थोपा जाना, पूना पैक्ट के विरोध में हिंदुओं का देशव्यापी आंदोलन। यह महत्वपूर्ण कारण थे कि जिससे यह निष्कर्ष निकला कि हिंदू समाज पूरातन कट्टरपंथी मान्यताओं में दृढ़ विश्वास रखता है तथा समतावादी मूल्यों को हिंदू धर्म के भीतर शामिल करने से इंकार करता है। सामाजिक समानता और आर्थिक अधिकारों के लिए निरंतर 1920 से 1935 तक संघर्ष करने के बाद हिंदू सोच की कट्टरता तथा धार्मिक स्तर पर किसी भी परिवर्तन की संभावना को न देखने के कारण डॉ. आंबेडकर धर्मपरिवर्तन के निष्कर्ष पर पहुँचे थे। हिंदूधर्म को त्यागने का निर्णय डॉ. भीमराव आंबेडकर ने एकाएक नहीं लिया, यदि उनकी पुस्तक 'जातिप्रथा का उन्मूलन' को पढ़े तो उसमें उन्होंने हिंदू विचारधारा को सुधारने के उपाय सुझाये हैं, किंतु हिंदू जातिवाद और सवर्ण हिंदूवाद में किसी प्रकार का कोई सुधार करने के लिए सहमत ही नहीं थे। सहमत तो क्या वे अपने धर्म में कोई कमी, कमजोरी या खोट देखते–मानते ही नहीं (एल. आर.बाली, डॉ. अम्बेडकर ने क्या किया? पृ. 243) धर्म संस्था के बारे में डॉ. अम्बेडकर ने अपना दृष्टिकोण निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया हैः

जो धर्म इंसानों में मानवीय बर्ताव को वर्जित करता है वह धर्म, धर्म नहीं है, बल्कि एक दण्ड है, एक सजा है।जिन कारणों से डॉ. अंबेडकर ने हिन्दूवाद का त्याग किया, उनकी व्याख्या, उन्होंने इस प्रकार की हैः

1. अज्ञान को प्रोत्साहनः "हिन्दूवाद अज्ञान का उत्पादक, पालक और प्रचारक है। गीता का यह आदेश कि 'अज्ञानी को अज्ञानी ही रहने दो', किसी प्रकार के बौद्धिक विकास की गुंजाइश नहीं छोड़ता।

2. नैतिकता का अभावः नैतिकता हिन्दूवाद की बुनियाद नहीं। "जैसे रेल के किसी डिब्बे को कभी गाड़ी से जोड़ दिया जाता है तो कभी अलग कर लिया जाता है, ऐसे ही हिन्दूवाद में नैतिकता का स्थान है।" ऐसी हालत डॉ. अंबेडकर को मान्य नहीं।

3. असमताः जातिभेद, छुआछात, भेदभाव और क्रमवार नाबराबरी हिन्दूवाद के अभिन्न अंग हैं क्योंकि उनको हिन्दू धर्म शास्त्रों का समर्थन प्राप्त है, इनको मिटाने का मतलब है हिन्दूवाद को मिटाना। हिन्दू यह करने के लिए न कभी पहले तैयार थे, न इसके लिए आज सहमत हैं और न रहे, है डॉ. आंबेडकर ने सच कहा हैः

''आधुनिक हिन्दूवाद जातिभेद की चट्टान पर स्थिर है। कोई भी तर्क इसे अस्थिर नहीं कर सकता।''

हिन्दूवाद द्वारा लाखों–करोड़ों की संख्या में 'नीच' ठहराए गए लोग सदा–सदा के लिए 'अछूत' क्यों बने रहे? इस प्रश्न का उत्तर भी हिन्दूवाद और हिन्दू समाज डॉ. अंबेडकर को नहीं दे सका।

उन्होंने हिन्दू नेताओं को श्री थूसीडीडिस के शब्दों में प्रश्न किया

''हमारे स्वामी बने रहने में आपका हित हो सकता है किन्तु आपके गुलाम बने रहने में हमारा क्या हित है।''

निष्कर्षतः हिंदूवाद (ब्राह्मणवाद) में भ्रातृभाव, सामाजिक एकता, स्वतंत्रता तथा न्याय का अभाव है। जनसाधारण के हितों से कोई सरोकार नहीं। इसका केंद्र मात्र एक वर्ण के

अधिकारों का समर्थन करता है तथा अन्य वर्ण–जाति के व्यक्तियों के हितों का इंकार किया जाता है। इसके अंदर सेवाभाव की कमी है क्योंकि एक वर्ण शूद्र को अन्य तीन वर्णों की सेवा करने का आदेश इस धर्म में दिया गया है और इस पर अमल न करने पर धर्म द्वारा निर्धारित सजाएँ आज इस स्वाधीन देश में दलित (अछूत) वर्ग को देने में कोई कोताही नहीं की जाती। इस पर धर्म की संमति होने का गर्व तथा न्यायसंगत होने का दंभ सरेआम भरा जाता है। भारत देश में दलितों पर हिंसात्मक हमले, उत्पीड़न–अत्याचार की घटनाएं खुद–ब–खुद यह वास्तविकता बताती हैं। अतः डॉ. आंबेडकर की मान्यता है कि जिस धर्म में इंसान को गुलाम की हैसियत में रखकर उसपर वर्चस्व बनाए रखने के प्रावधान किए गए हो, जिनका गर्व के साथ पालन करने में जातिगत अहंकार स्पष्टतः झलकता है। ऐसे धर्म से परिवर्तनता की अपेक्षा रखना सर्वथा मूर्खता है। हिंदू धर्म की गतिहीनता अर्थात परंपरागत रीति–रूढ़ियों तथा मूल्यों की आलोचना करते हुए डॉ. आंबेडकर क्रांतिकारी परिवर्तनशील विचार मूल्यों को अपनाने का नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने कहा 'जीवन के मूल्यों में पूर्ण परिवर्तन का अर्थ है वस्तुओं एवं मनुष्यों के प्रति नवीन दृष्टिकोण, इसका सीधा अर्थ है एक नवीन जीवन। लेकिन नवीन जीवन उस शरीर में प्रवेश नहीं कर सकता जो मृत है। नया जीवन केवल नये शरीर में ही शोभायमान हो सकता है। पुरातन बातों का आज कोई मूल्य नहीं है उनका अन्त होना चाहिए, उसी स्थिति में नया जीवन संभव हो सकता है।' (जातिप्रथा का उन्मूलन, डॉ. आंबेडकर, पृ. 76–77) हिंदूदर्शन के प्रति अतीशय कठोर शब्दों में उन्होंने आलोचना की है। वे कहते हैं हिंदू धर्म मानवता का भाव प्रदर्शित करने की शिक्षा नहीं देता। इसलिए वह शक्ति का उदाहरण है।

हिंदू धर्म पशुओं को छूना वर्जित नहीं मानती किंतु कुछ मनुष्यों को छूने को वर्जित करता है, यह मजाक है। हिंदू धर्म कुछ वर्गों को शिक्षा पाने, धन एकत्र करने तथा हथियार रखने से रोकता है, वह धोखा है। हिंदूधर्म निर्धन को निर्धन ही रहने देना पसंद करता है, यह एक छल है। (आंबेडकर ने कहा था, खंड 4, एल.आर. बाली) इसलिए धर्म को नजरअंदाज करना वैसे ही है जैसे बिजली के खुले तार की अनदेखी करना है। (डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर संपूर्ण वाड़मय खंड 4, पृ. 24)

हिंदू धर्म का दर्शन न तो सामाजिक एकता को मान्यता देता है और न ही व्यक्तिगत न्याय को। अतः ऐसे धर्म का इंसान के लिए क्या अर्थ है।' (डॉ. आंबेडकर, समग्र वाड़मय, खंड–3, पृ. 92)

दलित वर्ग जो भारतीय हिंदू समाज का बड़ा हिस्सा था, के धर्म परिवर्तन से हिंदू जनसंख्या के घटने के भय से आक्रांत हिंदू धर्म नेता डॉ. आंबेडकर की आलोचना करने लगे थे। जिनमें प्रमुख रूप से अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अध्यक्ष, मदन मोहन मालवीय ने डॉ. आंबेडकर की निंदा की और दलितों से हिंदूधर्म का परित्याग न करने का आग्रह करते हुए कथा था "हम उनके पैरों की रज को अपने सिर–माथे लगायेंगे" (बाबू जगजीवनराम–जीवन और व्यक्तित्व, पृ. 99) कांग्रेस के कद्दावार नेता म. गांधी और बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने येवला प्रस्ताव का विरोध करते हुए डॉ. आंबेडकर के धर्म परिवर्तन की घोषणा को दुर्भाग्यपूर्ण कहा था।

म. गांधी द्वारा किए विरोध के जवाब में डॉ. आंबेडकर ने धर्म की मानव कल्याण की भूमिका को बताते हुए लिखा था ''मैं गांधी जी से सहमत हूँ कि धर्म आवश्यक है। परंतु मैं यह नहीं मानता कि उस व्यक्ति के लिए पूर्वधर्म में विश्वास करना आवश्यक है। जिस धर्म को उसने अपनाया है वही धर्म उसे कुजात मानता हो, जिसे वह जीवन में अच्छे मूल्य के रूप में अपनाता है और उसे अपनी प्रगति तथा कल्याण का प्रेरणा–स्रोत मानता है वही

धर्म उसे प्रगति से वंचित करता हो।'' (राष्ट्रीय आंदोलन में डॉ. आंबेडकर की भूमिका, डॉ. डी. आर. जाटव, पृ. 121) धर्म परिवर्तन की घोषणा के तुरंत बाद हुए विरोध, हिंदू–धर्म गुरुओं द्वारा किए गंभीर आरोपों का डॉ. आंबेडकर लगातार सामना करते रहें। समर्थकों में से बहुत थोड़े उनके पक्ष को समझ सकें थे। दलित मुक्ति आंदोलन के द्वारा दलित वर्ग में जगी चेतना का विकास अब तक अपने चरम पर पहुँच चुका था। डॉ. आंबेडकर के धर्म परिवर्तन की घोषणा का दलित वर्ग विशेषकर महारों ने स्वागत किया। वे ऐसे धर्म में कदापि रहना नहीं चाहते जिसमें उन्हें इंसान की गरिमा से वंचित करके अपमानीत होने की स्थिति में रखने का प्रयास था। डॉ. आंबेडकर की अध्यक्षता में 22 मई, 1936, को लखनऊ में धर्म परिवर्तन पर विचार करने हेतु सर्वधर्म सम्मेलन तथा अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ की दो सभाएं हुई। इस सभा के निर्णयानुसार धर्म परिवर्तन के विचार को कुछ समय तक स्थगित करने और इस पर दलितों को चिंतन करने का समय दिया जाना तय हुआ। 30 मई, 1936 को दादर, (मुंबई) में महारों के विशाल सम्मेलन में डॉ. आंबेडकर ने आवाहन करते हुए कहा था ''जिस प्रकार स्वराज भारत के लिए आवश्यक है उसी प्रकार अछूतों के लिए धर्म परिवर्तन करना आवश्यक है। दोनों ही आंदोलनों के पीछे मूलभूत प्रेरणा स्वतंत्रता की भावना है।'' यह धर्म परिवर्तन किसी भौतिक लाभ से अभिप्रेरित नहीं है, अपितु आत्म–सम्मान, आत्म–प्रतिष्ठा, मानव स्तर पर आध्यात्मिक कल्याण से जुड़ा हुआ है। डी. आर. जाटव, पृ. 126)

8.5.1 बुद्ध धम्म की दीक्षा

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने महाराष्ट्र के नागपुर में 14 अक्टूबर, 1956 में भिक्षु चन्द्रमणि द्वारा बुद्ध धम्म की दीक्षा ली। दलित वर्ग के लिए यह क्रांतिकारी ऐतिहासिक दीन था, लगभग पांच लाख दलित बुद्ध धम्म में दीक्षित हुए। बी.बी.सी लंदन पर 12 मई 1956 को दिए अपने भाषण में डॉ. आंबेडकर ने बुद्ध धम्म को अपनाने के बारे में कहा– ''बुद्ध का धम्म ही केवल एक ऐसा धर्म है जिसे विज्ञान द्वारा जागृत समाज ग्रहण कर सकता है और जिसके बिना वह नष्ट हो जाएगा। आधुनिक संसार को भी खुद को बचाने के लिए बुद्धधम्म को अपनाना होगा की धर्म संबंधी धारणा इस प्रकार है – डॉ. अंबेडकर ''दुनिया में हिन्दूवाद के अतिरिक्त तीन बड़े धर्म बुद्धधम्म, ईसाईमत और इस्लाम हैं। उनके अलावा कई सम्प्रदाय भी हैं जिनको धर्म नहीं कहा जा सकता चाहे वह दावे कितने भी करें।''

बुद्ध धम्म ही क्यों?

महाराष्ट्र के नगर नागपुर में 14 अक्तूबर, 1956 को विश्व के तीनों बड़े धर्मों में से डॉ. भीमराव अंबेडकर ने केवल बुद्ध धम्म ही को अपनाया और भिक्षु चन्द्रमणि द्वारा बुद्ध धम्म में दीक्षित हुए। उन्होंने बुद्धधम्म ही को क्यों पसंद किया, क्यों चुना, इसकी व्याख्या उन्होंने स्वयं ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कारपोरेशन (बी.बी.सी.) लन्दन पर 12 मई, 1956 को दिए अपने भाषण में इस प्रकार की है:

''दिए गए थोड़े समय में मुझे दो प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कहा गया है। पहला, मैं बुद्ध धर्म को क्यों पसंद करता हूँ? और दूसरा, यह वर्तमान परिस्थितियों में दुनिया के लिए कितना उपयोगी है?

मैं बुद्ध धर्म को इसीलिए पसंद करता हूँ क्योंकि यह एक साथ तीन सिद्धांत देता है जो दूसरा कोई धर्म नहीं देता। दूसरे सभी धर्म 'ईश्वर', 'आत्मा' और 'मृत्यु के बाद का जीवन' में उलझे हुए हैं। बुद्ध धर्म अंधविश्वास और अलौकिकता के मुकाबले में प्रज्ञा (ज्ञान) सिखाता है। यह करुणा (प्रेम) सिखाता है। यह समता (समानता) की शिक्षा देता है। बुद्ध

धर्म के ये तीनों सिद्धांत मुझे आकर्षित करते हैं। दुनिया को भी ये तीनों सिद्धांत पसंद आने चाहिएं। न तो ईश्वर और न ही आत्मा संसार को बचा सकते हैं।

एक तीसरा भी विचार है जो संसार को पसंद आना चाहिए और खास तौर पर दक्षिण पूर्व एशिया में भाग को दुनिया कार्ल मार्क्स और साम्यवाद (कम्यूनिज़्म) की चढ़ाई का सामना कर रही है। मार्क्स को इसका जनक कहा जाता है। मार्क्सवाद और कम्यूनिज़्म का संबंध संसारिक मामलों से है और उसने दुनिया की धार्मिक व्यवस्था की नींव को हिला दिया है। यह स्वाभाविक है क्योंकि यद्यपि आज धार्मिक व्यवस्था का संबंध संसारिक व्यवस्था से नहीं है परन्तु फिर भी यह सभी संसारिक व्यवस्था का आधार है। सांसारिक व्यवस्था बहुत दिन नहीं चल सकती। यदि इसे धर्म की स्वीकृति नहीं है चाहे यह कितनी भी अप्रत्यक्ष क्यों न हो।"

डॉ. अंबेडकर ने स्पष्ट रूप में बताया हैः "बुद्ध जिसे धम्म कहते हैं वह धर्म यानी रिलिज़न यानी धर्म (मज़हब) मानने से इंकार किया है। इससे बुद्ध धम्म को कोई हानि नहीं होती। यह तो इस बात को स्पष्ट करता है कि धर्म में कहीं कमी है।"

प्रसिद्ध विज्ञानी प्रो. लक्ष्मी नरसु ने बुद्ध धम्म के धर्म न होने के तथ्य को और भी ज्यादा स्पष्ट किया है। उन्होंने कहा हैः "यदि धर्म की शुरुआत अदृश्य और अज्ञेय या अनन्त की भावना के पीछे भटकने या किसी ऐसे परा–प्राकृतिक व्यक्ति (अस्तित्व) के डर से होती है, जिसे ब्रह्माण्ड का उत्पादक और नियंत्रक कहा जाता है, जिस पर आदमी अपने को आश्रित समझता है, जिसके आगे आदमी प्रार्थनाएं करता है, तो बुद्धइज़्म रिलिज़न (धर्म) नहीं है, क्योंकि इसमें परा–प्राकृतिक का सहारा छोड़ कर मनुष्य को केवल अपने सहारे दुनिया के दुःखों से मुक्त होने के लिए कहा गया है। बुद्धधम्म की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यह अज्ञात परमात्मा संबंधी सब बातों को त्याग कर केवल इस यथार्थ दुनिया के जीवन की बात करता है।" अंबेडकर का मत बहुत स्पष्ट है। वह कहते हैंः

"बुद्ध धम्म और हिन्दूइज़्म में बहुत बड़ी भिन्नता है। बुद्धइज़्म का अर्थ है–समान अधिकारों पर आधारित जातिविहीन समाज इसके विपरीत हिन्दूइज़्म प्रारम्भिक तौर पर जाति–पाति प्रणाली पर आधारित है। जाति–पाती की प्रणाली ऐसी है, जो अलगाव, असमता और शोषण को प्रोत्साहित करती है।

बुद्ध ने समता का प्रचार किया। वे चातुर्वर्ण्य के सबसे बड़े विरोधी थे। बुद्ध वेदों में विश्वास नहीं करते थे क्योंकि तर्क वे यकीन रखते थे और किसी भी पुस्तक के ईश्वरीय रचना होने में विश्वास नहीं करते थे। ब्राह्मणी–समाज ने बुद्ध के अहिंसा जैसे सिद्धांत को अपना लिया। लेकिन बुद्ध के समानता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया बल्कि उन्होंने इसका कड़ा विरोध किया। यही कारण है कि हिन्दू समाज वही कुछ बना रहा। जो वह सदा से बना हुआ है।

बुद्ध धम्म हिन्दूधर्म की भांति स्वर्ग की प्राप्ति पर कोई बल नहीं देता। इसी जीवन में प्रसन्न व सुखी रहने के लिए हर किसी को नैतिकता, अहिंसा, समता और भ्रातृभाव के सिद्धांतों का पालन करनी चाहिए। बुद्ध ने इसी अनन्त सच्चाई की शिक्षा दी।

हिन्दुओं में से पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने ज़रूर ईमानदारी का सबक दिया है। उन्होंने कहा हैः "

बुद्धवाद और जैनवाद कदापि हिन्दूवाद नहीं थे, न ये वैदिक धर्म ही थे। बुद्ध धम्म के 'बहुजन–हिताय, बहुजन सुखाय' सिद्धांत तो न केवल भारत के लोगों को आकर्षित किया बल्कि दक्षिण–पूर्व एशिया से लेकन अफगानिस्तान तक इसके समाजवादी मूल्यों को

अपनाया गया। बुद्ध धम्म ने आज से हजारों वर्ष पूर्व विचार–स्वतंत्रता और वैज्ञानिक मनोवृत्ति के लिए आवाज उठाकर न केवल भारत का बल्कि सारे विश्व का मार्गदर्शन किया।

8.6 सारांश

आजाद भारत के संविधान निर्माता भारतरत्न डॉ. आंबेडकर के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक चिंतन के परिणामस्वरूप समाजवादी जनतंत्र की नींव इस देश में पड़ सकीं। संविधान मसौदा समितियों के अध्यक्ष के रूप में कार्य करते हुए संविधान का ढाँचा स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व और न्याय मूल्यों की रक्षा करने वाला हो यह उनका तथा अन्य सदस्यों का मानना था। एक समाजशास्त्री के नजरिए से, एक विचारक और चिंतक का मत था कि जब तक भारतीय समाज आंतरिक गुलामी यानी सवर्ण वर्चस्व से बहुसंख्यक दलित आदिवासी तथा स्त्री मुक्ति के सच को हासिल नहीं करता, तब तक एक देश के रूप में उसे आजादी के सपने देखने का नैतिक अधिकार नहीं हैं। डॉ. आंबेडकर का जातिप्रथा उन्मूलन सिद्धांत मौलिक एवं वैज्ञानिक विचार था। जिसके द्वारा जातिप्रथा के भेदभाव को जड़ से उखाड़ फेंका जा सकता था। जातिप्रथा छुआछूत की बुराई ने हिंदू समाज की कार्यकुशलता ही समाप्त कर दी जिसके कारण देश के विकास में रूकावटें पैदा हुई है। स्वतंत्रता आंदोलन के रा ट्रीय कार्यक्रम में जातिप्रथा के उन्मूलन को एक महत्वपूर्ण मुद्दे के रूप में ामिल किए जाने का उनका प्रयास रहा। वे इस बात को जानते थे कि जातिप्रथा के कारण निम्न जातियों के साथ किया जानेवाला क्रूरतापूर्ण और नृशंस व्यवहार स्वतंत्रता के बाद भी नहीं बदलेगा। जो सामाजिक व्यवस्था को असफलता की ओर ले जा सकता है। वे व्यक्ति के जन्म की पहचान से अधिक कर्म से उस व्यक्ति की पहचान महत्वपूर्ण मानते थे। महाड़ के चवदार तालाब का सत्याग्रह, मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप से जलाया जाना और कालाराम मंदीर सत्याग्रह अस्पृश्यों के मानव अधिकारों को हासिल करने का संघ ा तथा जाति के विनाश की घो ाणा थी। दलित–वंचितों में आत्मबोध जगने के संघ ा का नेतृत्व डॉ. आंबेडकर ने किया। देश के प्रथम कानून मंत्री की दृ ट में स्वातंत्र्योत्तर भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे में जाति के विभाजन की दूर–दूर तक दखल न हो तथा राज्य का ढाँचा स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांत पर मजबूत खड़ा रहे। राजनैतिक प्रजातंत्र डॉ. आंबेडकर के चिंतन का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा। जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोपरी हो तथा प्रत्येक नागरिक का अपना मत होने का अधिकार और अवसर प्राप्त हो। इसे संवैधानिक रूप देने में उनकी भूमिका सर्वोपरी रहीं। वे इस बात से आश्वस्त हो जाना चाहते थे कि समाज के कमजोर वर्ग को विशे ा रूप से अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए संविधान में विशे ा सुरक्षा के संवैधानिक उपाय किए जाएंगे तभी वे लोकतंत्र में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकारों के भागीदार बन सकेंगे। उनके चिंतन का आदर्श समाज स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के मूल्यों को जीवन में सर्वोपरी मानने वाला समाज रहा है। इसीलिए संविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत संविधान के मसौदे में एक मनु य एक मूल्य के सिद्धांत को अपनाया गया।

भारतीय संविधान सभी नागरिकों को जन्म, लिंग, वंश, धर्म, भा ाा आदि के भेदभाव के बिना स्वतंत्रता व समानता प्रदान करता है। संविधान के सामाजिक, राजनैतिक तथा वैधानिक प्रावधान नारी अधिकारों को वास्तविक रूप में लागू करके समाज में उन्हें सम्मानजनक

स्थान प्रदान करता है। नारी के सम्मान और अधिकारों के प्रति अतीशय चिंतित रहे डॉ. आंबेडकर ने हिंदू कानून व्यवस्था में परिवर्तन लाने हेतू क्रांतिकारी कदम उठाकर हिंदू कोड बिल की रचना की। भारतीय इतिहास में स्त्री उन्नति के लिए वैधानिक रूप से किया गया यह पहला प्रयास था। हिंदू नारी ने सदियों से झेली प्रताड़ना और वंचनाओं को समाप्त करके इस बिल द्वारा बाल विवाह पर प्रतिबंध, जीवन साथी के चुनाव एवं अंतर्जातीय विवाह का अधिकार, तलाक का अधिकार, संपत्ति पर अधिकार और गोद लेने एवं संरक्षता के अधिकारों को प्राप्त किये जाने का प्रावधान किया गया। इस क्रांतिकारी कदम के लिए डॉ. आंबेडकर को महात्मा बुद्ध और महात्मा ज्योतिबा फूले के साथ देश के सबसे बड़े समाज सुधारक और विचारक कहने में संकोच नहीं किया जाना चाहिए। स्त्री की स्वतंत्रता उनके सभी संकल्पनाओं के पीछे मूलभूत विचार रहा है। हिंदू धर्म को त्याग कर सभी दलितों के साथ बुद्ध धर्म को स्वीकार करने के पीछे भी मूलभूत प्रेरणा स्वतंत्रता की भावना है। धर्म परिवर्तन किसी भौतिक लाभ से प्रेरित होकर नहीं बल्कि आत्मसम्मान, आत्मप्रति ठा एवं मानव के आध्यात्मिक कल्याण से जुड़ा हुआ है। हिंदू ध र्म की गतिहीनता जो कि पुरातन रीति–रूढ़ियों और मूल्य परंपरा की आलोचना करते हुए डॉ. आंबेडकर इस निर्णय पर पहुँच चुके थे कि जो धर्म मानवता भाव प्रदर्शित करने की शिक्षा नहीं देता, बल्कि अपने जैसे ही इंसानों को छूना वर्जित मानकर हिंसात्मक तरिके अपनाकर दलितों को उनकी स्थिति से उपर उठने नहीं देता। निर्धन को निर्धन ही बनाए रखना चाहता है, यह छल है उस मानव समूह से जिन्होंने हिंदू धर्म को अपनाए रखा था। डॉ. आंबेडकर ने हिंदू धर्म की कठोर आलोचना ही नहीं कि बल्कि ऐसे धर्म को त्यागकर लाखों दलितों के उज्ज्वल भवि य और आत्मसम्मान के लिए करूणा, ांति, मैत्री और प्रेम के मूल्यों को सर्वोपरी मानने वाले बुद्ध धर्म का स्वीकार किया। डॉ. आंबेडकर के क्रांतिकारी वैचारिक चिंतन से इस देश के बहुजन समाज और नारी वर्ग के उत्थान, प्रगति में क्रांतिकारी बदलाव आना संभव हुआ।